नियमसार, ४४ गाथा का ६९ वाँ कलश है।

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम्।।६९।।

श्लोकार्थः—**जिसने ज्ञानज्योति द्वारा...** यहाँ तो बात तो ऐसी कहते हैं कि नाश करता है, परन्तु अन्दर में है ही नहीं। **जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का नाश किया है,...** अर्थात् अन्तर में पापरूपी अन्धकार है ही नहीं। सिद्धपद की पर्याय हुई तो अन्धकार का नाश किया, ऐसा कहा जाता है परन्तु आत्मा सर्वदा त्रिकाली, वह तो **ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकार...** समूह, उसमें है ही नहीं। जो नहीं है, उसका नाश किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,... है ? आहाहा! भगवान आत्मा नित्य आनन्द, ध्रुव आनन्द, अविचल आनन्द आदि ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता आदि इत्यादि **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** जिसकी कोई तुलना नहीं, जिसे कोई उपमा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** आहाहा! अनन्त-अनन्त काल गया, कभी स्व चीज की महिमा आयी ही नहीं। बाहर की महिमा (की)। क्रियाकाण्ड में राग मन्द करके कुछ महाव्रत या व्रत या आचरण कुछ करे, रस त्याग करे, आहार त्याग करे, वस्त्र त्याग करे, उसमें कुछ नहीं है। जो चीज़ है, उस चीज़ पर दृष्टि, उस चीज़ का उपादेयपना दृष्टि में आये बिना जन्म का अन्त नहीं आता। आहाहा!

यह कहते हैं, **नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** नित्य आनन्द। आनन्द प्रगट होगा, वह तो पर्याय है; यह तो द्रव्य है। **नित्य आनन्द आदि...** ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण नित्य आनन्द आदि अनन्त गुण। जो त्रिकाल समय तीन काल के, एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। एक सेकेण्ड में असंख्य समय, ऐसा त्रिकाल। त्रिकाल समय से जिसमें अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! **आनन्द आदि...** आदि अर्थात् अनन्त-अनन्त। जिसके गुण की संख्या की मर्यादा नहीं। अनन्त-अनन्त (गुण हैं) और एक-एक गुण की शक्ति की मर्यादा नहीं, ऐसे अनन्त आनन्द आदि गुण की महिमा को धारण करनेवाला है। आहाहा! इस महिमा के समक्ष दुनिया की किसी चीज़ पर महिमा नहीं आती। इन्द्र के इन्द्रासन हों, चक्रवर्ती का राज हो, वे कचरे के ढेर हैं। यह (स्वभाव) आनन्द का ढेर (पिण्ड) है।

अनन्त-अनन्त गुण की महिमा को धारण करनेवाला, ऐसी चीज़ आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसे **नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा...** जिसकी तुलना नहीं। आहाहा! जिसकी उपमा नहीं, जिसके गुण के साथ दूसरे गुण की उपमा दी जाये,

ऐसी कोई तुलना नहीं। उसके गुण उसके गुणरूप अथवा सिद्धस्वरूप। सिद्ध तो पर्याय है परन्तु ऐसा त्रिकाली गुणस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा **जो सर्वदा अमूर्त है,...** सर्वदा अमूर्त है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श त्रिकाल में उसे स्पर्श ही नहीं हुए हैं। ऐसी अमूर्त चीज़ भगवान आत्मा है। आहाहा!

जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा... जो भगवान आत्मा अपने से अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा। आहाहा! कहीं चलना नहीं, हिलना नहीं.. आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का ढेर, अनन्त गुण का गोदाम, आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा **अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,...** उत्तमशीलस्वरूप ही है। उत्तम स्वभाव, उसका स्वभाव अत्यन्त उत्तम, त्रिकाल स्वभाव उत्तम है। आहाहा! **उत्तमशील का मूल है,...** आहाहा! **उस भव-भय को हरनेवाले...** वह वस्तु ऐसी है कि भव-भय का नाश करनेवाली अर्थात् जिसमें भव है नहीं। आहाहा! उसे यहाँ भव-भय का नाश करनेवाली वस्तु कहा गया है। भव-भय का नाश करनेवाली तो पर्याय है परन्तु यह तो त्रिकाली भव के अभावस्वभावस्वरूप है, तो भव-भय का नाश करनेवाली चीज़ ही है। वस्तु ही ऐसी त्रिकाल है। आहाहा! **भव-भय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को...** मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान। आहाहा! ऐसे जो भगवान आत्मा, उसे **मैं वन्दन करता हूँ।** आहाहा! मुनि इतने शब्द कहकर (कहते हैं), वह भगवान वन्दन करनेयोग्य है, उसे मैं वन्दन करता हूँ। उस वन्दन के योग्य यही चीज़ है। आहाहा! दूसरे व्यवहार से वन्दन करनेयोग्य हैं, तीर्थंकर आदि। वे सब विकल्प उठता है। आहाहा! यह तो निर्विकल्प वन्दन करनेयोग्य निर्विकल्प। आहाहा! अभी इसमें भजन गाया नहीं?

प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा
पर की आस कहाँ करे प्रीतम, पर की आस कहाँ करे प्रीतम
कंई बातें प्रभु तुम अधूरा? कंई बातें तुम अधूरा?
प्रभु मेरे सब बातें तुम पूरा।

आहाहा! यह भजन गाया न! एक बार पण्डित हिम्मतभाई ने गाया था। उसमें है। आहाहा! 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' आहाहा! 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम' हे प्रिय प्रभु! आहाहा! तेरी प्रियता के समक्ष किसकी आशा करना? आहाहा! सब परिपूर्ण सर्व

शक्ति से भरपूर है। परिपूर्ण स्वभाववान है। किसकी आशा करना, प्रभु!? आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ की भी जिसमें आशा नहीं।

यहाँ तो अपने वहाँ तक आया, **जिसमें परमतत्त्व की वांछा नहीं है।** आहाहा! भगवान परमतत्त्व प्रभु की भी वांछा उसमें नहीं है। वांछा तो इच्छा है। ऐसे भगवान आत्मा को मैं जानकर, ज्ञान करके, ज्ञान में उसे लिया है तो उसका मैं आदर करके उस ओर झुकता हूँ। आहाहा! ज्ञान में वह चीज़ जानने में आयी है। समयसार १७ गाथा में ऐसा कहा, कोई बात कही नहीं परन्तु ऐसा कहा, प्रभु! प्रथम आत्मा को जान। बस, एक ही बात की है। १७ गाथा। उसकी टीका। तुम्हारे में सत्रह कहते हैं। टीका में कहते हैं कि तुम अपने को जानो। आहाहा! पहले तू स्व को जान। दूसरे नौ तत्त्व और छह द्रव्य और भगवान, यह बात छोड़ दी। आहाहा! प्रथम अपने को, प्रथम स्वयं को जान, उसमें सब है, प्रभु! उसमें कुछ कमी नहीं है, न्यूनता नहीं है कि दूसरे की आशा करनी पड़े.. आहा! परन्तु उसका माहात्म्य आता नहीं है। आहाहा!

अरूपी चीज़, अन-अभ्यास, शुभ-अशुभ का अनन्त अभ्यास, शुभ-अशुभ का अनन्त अभ्यास, उसके समक्ष शुद्ध का अभ्यास एक क्षण भी नहीं; इसलिए उसकी महिमा नहीं आती। वह महिमा आये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन हुए बिना धर्म की पहली शुरुआत नहीं होती। आहाहा!

यह कहते हैं। ऐसे **मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान...** आहाहा! मोक्षलक्ष्मी का तो ऐश्वर्यवान प्रभु आत्मा है। ऐसे **स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं। पद्मप्रभमलधारि मुनि। जिन्हें तीन कषाय के अभावस्वरूप आनन्द तो वर्तता है। आहाहा! एक संज्वलन कषाय रह गयी है। संज्वलन-रह गयी है। संज्वलन वे थोड़े जलते हैं। पंच महाव्रतादि दुःख हैं। जलते हैं, आत्मा को दुःख होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उन सबको छोड़कर मैं तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ को वन्दन करता हूँ। आहाहा! एकान्त लगे। आहाहा! वह चीज़ ही ऐसी है। जिसकी अन्तर्दृष्टि हुई और जिसे ज्ञान में ज्ञेय हुई, ज्ञान में ज्ञेयरूप से भास हुआ, वहाँ दूसरे सबकी कीमत उड़ गयी। अपनी कीमत के समक्ष सब कीमत (महिमा) उड़ गयी। आहाहा! अपने ज्ञान में ज्ञेय हुए बिना उसे यह चीज़ है - ऐसा ख्याल आये बिना, उसका वेदन हुए बिना उस चीज़ का माहात्म्य नहीं आता। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

गाथा-४५-४६

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति।।४५।।

अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं।।४६।।

वर्णरसगन्धस्पर्शाः स्त्रीपुन्नपुन्सकादिपर्यायाः।
सन्स्थानानि संहननानि सर्वे जीवस्य नो सन्ति।।४५।।

अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीव-मनिर्दिष्ट-सन्स्थानम्।।४६।।

इह हि परमस्वभावस्य कारणपरमात्मस्वरूपस्य समस्तपौद्गलिकविकारजातं न समस्ती-त्युक्तम्। निश्चयेन वर्णपञ्चकं, रसपञ्चकं, गन्धद्वितयं, स्पर्शाष्टकं, स्त्रीपुन्नपुन्सकादिविजातीय-विभावव्यञ्जनपर्यायाः, कुब्जादिसन्स्थानानि, वज्रर्षभनाराचादिसंहननानि विद्यन्ते पुद्गलानामेव, न जीवानाम्। सन्सारावस्थायां सन्सारिणो जीवस्य स्थावरनामकर्मसंयुक्तस्य कर्मफलचेतना भवति, त्रसनामकर्मसनाथस्य कार्ययुतकर्मफलचेतना भवति। कार्यपरमात्मनः कारणपरमात्मनश्च शुद्धज्ञानचेतना भवति। अत एव कार्यसमयसारस्य वा शुद्धज्ञानचेतना सहजफलरूपा भवति। अतः सहजशुद्धज्ञानचेतनात्मानं निजकारणपरमात्मानं सन्सारावस्थायां मुक्तावस्थायां वा सर्वदैकरूपत्वादुपादेयमिति हे शिष्य त्वं जानीहि इति।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह्न

(मंदाक्रांता)

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।

काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्।।

(हरिगीत)

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥

अन्वयार्थः—[वर्णरसगंधस्पर्शाः] वर्ण-रस-गंध-स्पर्श, [स्त्रीपुंनपुंसकादि-पर्यायाः] स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि पर्यायें, [संस्थानानि] संस्थान और [संहननानि] संहनन - [सर्वे] यह सब [जीवस्य] जीव को [नो सन्ति] नहीं हैं।

[जीवम्] जीव को [अरसम्] अरस, [अरूपम्] अरूप, [अंगधम्] अगन्ध, [अव्यक्तम्] अव्यक्त, [चेतनागुणम्] चेतनागुणवाला, [अशब्दम्] अशब्द, [अलिंगग्रहणम्] अलिंगग्रहण (लिंग से अग्राह्य) और [अनिर्दिष्टसंस्थानम्] जिसे कोई संस्थान नहीं कहा है ऐसा [जानीहि] जान।

टीकाः—यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है—ऐसा कहा है।

निश्चय से पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें, कुब्जादि संस्थान, वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं। संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है, त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्य सहित कर्मफलचेतना होती है। कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है ऐसा, हे शिष्य! तू जान।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ७९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(वीरछन्द)

मेरा यह मत, जीव पृथक् अरु तत् अनुगामी कर्म पृथक्।
जीव कर्म की अति समीपता से जो हुआ, विकार पृथक्॥
काल क्षेत्र आदिक जो भी हैं इस चेतन से भिन्न रहें।
अपने-अपने गुण-पर्यायों से शोभित सब पृथक् रहें॥

श्लोकार्थः—मेरा ऐसा मन्तव्य है कि आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है; आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है; और काल-क्षेत्रादि जो हैं वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं (अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं)।''

गाथा-४५-४६ पर प्रवचन

गाथा ४५-४६

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति।।४५।।

अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं।।४६।।

देखो, यह गाथा आयी। यह गाथा तो सब जगह है। यह ४६ गाथा है न? यह समयसार में है, प्रवचनसार में है, नियमसार में है, पंचास्तिकाय में है, अष्टपाहुड़ में है और षट्खण्डागम में है। बहुत पुरानी गाथा है। यह ४६वीं गाथा प्रत्येक ग्रन्थ में है। सब देखा है न, प्रत्येक ग्रन्थ में यह गाथा आयी है। आहाहा! समयसार की ४९वीं गाथा है। इसमें ४६वीं गाथा आयी है।

नीचे हरिगीत

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

क्लीव (शब्द) आया। नपुंसक। क्लीव शब्द संस्कृत में आता है। उसे नपुंसक कहते हैं। यहाँ तो स्पष्ट आया है। क्लीव / नपुंसक है। पण्डित विवाद करते हैं कि नपुंसक अर्थ कैसे किया? क्लीव का अर्थ नपुंसक कैसे किया?

मुमुक्षु : अर्थ ऐसा होता था, इसलिए किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है।

मूल समयसार के जो टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य हैं, उन्होंने यह अर्थ किया है और श्रीमद् की ओर से पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसमें भी है। आहाहा! शुभभाव और अशुभभाव नपुंसक करता है। आहाहा! अपनी चीज़ को छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, सहजानन्द प्रभु का आश्रय, अवलम्बन, सन्मुखता छोड़कर शुभरागादि में सन्मुखता, विस्मयता, कर्ताबुद्धि होती है, वह मिथ्यात्व है। वह नपुंसकता है। आहाहा! अभी सागर में चर्चा हुई थी। तीन पण्डितों की चर्चा हुई थी। जगन्मोहनलालजी, फूलचन्दजी और कैलाशचन्दजी।

मुमुक्षु : पाँच नाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच होंगे। दो महीने चली न, षट्खण्डागम की (वांचना) विद्यासागर के पास। वहाँ चर्चा चली थी। यह नपुंसक अर्थ कैसे किया। आहाहा! फिर फूलचन्दजी ने मूल पुस्तक बतायी कि मूल पुस्तक देखो! क्लीव का नपुंसक अर्थ किया है। यहाँ क्या है, देखो! क्लीव का अर्थ क्या है? नर-नारी तो बाद में आते हैं, तो क्लीव, यह नपुंसक आता है। आहाहा! लोगों को अपनी श्रद्धा में जरा आँच आये, इसलिए पूरे शास्त्र की दृष्टि भी बदल डालते हैं। आहाहा! कितनी जोखिम है, भाई! प्रभु! यहाँ तो अब थोड़े वर्ष रहना है। भविष्य में अनन्त काल रहना है। यहाँ जितना काल गया, उतना अब जायेगा नहीं। जिसे पचास-साठ वर्ष हुए, उसे अब पचास-साठ वर्ष रहना नहीं है। यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। आहाहा!

भविष्य में, प्रभु! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त काल रहना है। आहाहा! तो निजस्वरूप का अनुभव और निजस्वरूप की प्रतीति ज्ञान में आये बिना, ज्ञान में चीज़ आये बिना प्रतीति गधे के सींग जैसी है। यह १७-१८ गाथा में आया है। पाठ है। गधे के सींग -ऐसा पाठ है। समयसार की १७-१८ गाथा है न? ठेठ से चलता है न यहाँ तो। (संवत्) १९६४ वें वर्ष से वांचन चलता है। १९६४-६४। दुकान पर। यह सब थे हमारे मनसुख

और इसके पिता और उनके बड़े भाई। ये सब हमारे भागीदार थे। इनके पिता से बड़े भाई! और इनके पिता के भागीदार मेरे बड़े भाई के साथ, दो दुकानें थीं, परन्तु इस बात की गन्ध नहीं थी। आहाहा! भगत.. भगत.. करके निकाल डाले। मैं पढ़ता हूँ, मार्ग तो यह है। ये तो भगत है.. भगत है, ऐसा करके निकाल डाले। आहाहा! अरे! प्रभु! परन्तु यह तेरी चीज़ तेरे पास है न! तेरे पास क्या? तू ही ऐसा है। पास तो और दूसरी चीज़ पास में होगी, ऐसा हो। प्रभु! तूने तेरी महिमा कभी नहीं की है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। यहाँ तो वह क्लीव आया न? क्लीव का अर्थ नपुंसक है। क्योंकि बाद में नर-नारी तो आया है...

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥

आहाहा! **टीका: —यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत...** परमस्वभावभूत ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! अनादि-अनन्त एकरूप प्रभु, जिसमें पर्याय का भी स्पर्श नहीं। आहाहा! पर्याय भी जिसके ऊपर तैरती है, ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! **परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकार -समूह नहीं है—ऐसा कहा है।** इस गाथा में ऐसा कहा है।

निश्चय से पाँच वर्ण,... नहीं है प्रभु में। आहाहा! **पाँच रस,...** नहीं। **दो गंध,..** नहीं। **आठ स्पर्श,...** नहीं। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि...** देखो! यह क्लीव का अर्थ किया। आहाहा! अपनी दृष्टि के साथ मेल न खाये तो लोग एकदम तिरस्कार कर दे, कि नहीं.. नहीं.. नही.. प्रभु! शान्ति रख। मार्ग बहुत महिमावन्त है। नाथ आत्मा को पकड़ना कोई साधारण बात नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन कोई साधारण बात नहीं है, भाई! यह परमात्मा का साक्षात्कार है.. आहाहा! जिसमें परमात्मा का मिलाप होता है, ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय जिसमें नहीं, उसका मिलाप होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवन्त! आहाहा!

स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि... यह क्लीव का अर्थ किया न? मूल क्लीव है न? यहाँ पाठ में तो नपुंसक स्पष्ट शब्द है। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि...** पाठ की संस्कृत टीका है, उसमें तो नपुंसक स्पष्ट शब्द पड़ा है। संस्कृत टीका। आहाहा! **यहाँ (इन दो गाथाओं में)**

परमस्वभावभूत... परमस्वभाव, जहाँ क्षायिकभाव की कोई तुलना नहीं। जहाँ क्षायिकभाव, केवलज्ञान की तुलना नहीं। आहाहा! जहाँ केवलज्ञान भी द्रव्य के अनन्तवें.. अनन्तवें.. अनन्तवें.. भाग है। अनन्तवें.. अनन्तवें.. अनन्तवें.. भाग केवलज्ञान है। आहाहा! ऐसा गुण का सागर, प्रभु! **परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है—ऐसा कहा है।** आहाहा! यहाँ आया। विजाति।

स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें,... आत्मा में नहीं हैं। **कुब्जादि संस्थान,...** संस्थान के छह प्रकार हैं, वे आत्मा में नहीं हैं, वे तो जड़ में हैं। **वज्रर्षभनाराचादि संहनन...** वे आत्मा में नहीं हैं, जड़ में हैं। भगवान में तो उनका अभाव है। आहाहा! **पुद्गलों को ही हैं,...** वे **वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं।** वे जीव में है ही नहीं। वज्रवृषभनाराचादि संहनन होवे तो केवलज्ञान होता है, ऐसा पाठ आता है परन्तु वह जीव में है ही नहीं। अपने से ही केवलज्ञान होता है। जहाँ अन्तर्मुख एकाग्र हुआ, परमस्वभावभूत में जहाँ लीन हुआ, वहाँ केवलज्ञान एक क्षण में प्रगट होता है, ऐसा स्वभावभूत परमात्मा है। आहाहा! यहाँ तो एक बीड़ी पीवे, उसकी कीमत के समक्ष भगवान की कीमत एक ओर। पीते हैं न? पीते समय ऐसे (करे)। क्या है? प्रभु! और ठीक से दो बीड़ी पीवे तब पाखाने में दस्त उतरे, ऐसे तो जिसके लक्षण, अब उसे कहना कि परमस्वभावभूत भगवान में कोई पुद्गल है ही नहीं। आहाहा! उसमें पुरुषवेद है नहीं। आहाहा! उसमें नपुंसकवेद है नहीं। प्रभु! तुझमें स्त्रीवेद है नहीं। आहाहा! और... आहाहा!

संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना... संसारी अवस्था में स्थावर नामकर्म एकेन्द्रिय। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति.. आहाहा! जंगल में पृथ्वी जो अन्दर है न, पृथ्वी, उस पृथ्वी के एक कण में पृथ्वी के असंख्य जीव हैं। खान में से पत्थर निकालते हैं न? टाईल्स। रावण को तो स्फटिक रत्न का मकान था। रावण को स्फटिक रत्न का मकान था। स्फटिक रत्न का... क्या कहलाता है? सीढ़ियाँ। स्फटिक रत्न की सीढ़ियाँ, स्फटिक रत्न के महल। ऊपर चढ़ते हों और नीचे देखे कि मैं चढ़ता हूँ या नहीं, ऐसा हो जाये। आहा..हा..! वह मरकर नरक में गया। स्फटिक रत्न का बँगला! आहाहा! एक स्फटिक रत्न के टुकड़े की करोड़ों की कीमत। ऐसा पूरा स्फटिक रत्न का बँगला। क्या किया? मरकर तीसरे नरक में गया। आहाहा!

कहते हैं, सब पौद्गलिक (हैं); आत्मा में नहीं। जीव को स्थावरनामकर्मयुक्त आदि एकेन्द्रिय जीव है। उसको कर्मफलचेतना है। क्या कहते हैं ? यह पृथ्वी, पानी जो गोले में है न ? या कुएँ में, उस गोले के पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं, एक जीव में अनन्त गुण हैं। आहाहा! पृथ्वी, पानी, अग्नि। बीड़ी सुलगाते हैं, उस अग्नि में असंख्य जीव हैं। वे सब पृथ्वी, अग्नि, पानी, वायु और वनस्पति। एक नीम की पत्ता लो। नीम का एक पत्ता, हों! उस पत्ते के असंख्यवें भाग का टुकड़ा लो, तो भी उसमें एक-एक शरीर में एक जीव, ऐसे असंख्य हैं। आहाहा! इनके कर्म कैसे हैं ?

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति को कर्मफल है। उन्हें तो कर्मफलचेतना होती है। आहाहा! कर्मफल का अर्थ, अकेली राग और द्वेष की चेतना है। आहाहा! वे सब वृक्ष और अभी देखो न ऐसी पृथ्वी हरियाली से खिल गयी है। एक-एक कण में, एक-एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। इतनी वनस्पति। आहाहा! यह नीम का पत्ता, पीपल का पत्ता। पीपल के पत्ते का एक टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य शरीर हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। आहाहा! कहते हैं कि उसे क्या है ? उसे कर्मफलचेतना है। वह क्या भोगता है ? क्या अनुभव करता है ? कर्मफलचेतना। आया ?

उस **संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है,...** एकेन्द्रिय को। आहाहा! कर्म अर्थात् जड़ नहीं, हों! कर्म अर्थात् रागरूपी कार्य, मिथ्यात्वरूपी कार्य। एकेन्द्रिय जीव को तो मिथ्यात्व ही है। वह मिथ्यात्वरूपी जो कर्म अर्थात् कार्य, उस कर्म के फल का उसे वेदन है। आहाहा! और प्रत्येक प्राणी ने पहले निगोद में अनन्त काल बिताया है। जैसे लड़की पहले पीहर में रहती है, वैसे इस जीव का पीहर निगोद है। आहाहा! सिद्धान्त में लेख है कि पहले अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भव निगोद में रहा। पश्चात् अनन्त काल में कोई त्रस हुआ और पश्चात् मनुष्य हुआ। वह भी अनन्त बार हुआ। उन सब एकेन्द्रिय जीवों को कर्मफलचेतना होती है। राग-द्वेष की चेतना अर्थात् वेदन, दुःख का वेदन एकेन्द्रिय को है। आहाहा! ऐसे हरे-पीले फूल दिखते हैं। वर्षा में फूल... एक बार पीछे देखने गये थे। दो इतने बड़े सफेद फूल थे। कोई तोड़ गया, परन्तु देखने में ऐसे मानो... आहाहा! अनन्त कर्मफलचेतना को वेदते हैं। राग और द्वेष और कषाय, वह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। कर्म अर्थात् कार्य। विकारी कार्य के फल का उसे वेदन है। आहाहा! प्रभु! वहाँ तू अनन्त बार रहा है।

त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को... दोइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जो त्रसजीव हैं, नारकी, मनुष्य, देव आदि सब, उन्हें **कार्य सहित कर्मफलचेतना होती है।** आहाहा! अर्थ क्या किया? कि उन्हें कर्मचेतनासहित **कर्मफलचेतना होती है।** एकेन्द्रिय को अकेली कर्मफलचेतना, कर्मचेतना नहीं। है तो सही परन्तु उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। शास्त्र उसे गिनते नहीं हैं। एकेन्द्रिय में कर्मचेतना अर्थात् राग की चेतना और उसके फल का भोक्ता वहाँ है। और त्रस में.. आहाहा! है? **कार्य सहित...** कार्य अर्थात् कर्म; कर्म अर्थात् रागादि कार्य। आहाहा! राग, दया, दान, पुण्य, पाप इन सबको कार्य कहते हैं। उस **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्य सहित...** कार्य सहित अर्थात् कर्मचेतनासहित... आहाहा! शुभ-अशुभभाव की कर्मचेतनासहित। **कर्मफलचेतना होती है।** समझ में आया? एकेन्द्रिय को अकेली कर्मफलचेतना होती है। त्रस जीव दोइन्द्रिय से (लेकर) देव मनुष्य आदि को कर्मचेतना **सहित कर्मफलचेतना होती है।** आहाहा! पंचास्तिकाय में पाठ है। आहाहा!

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को... आहाहा! एकेन्द्रिय लिये, पश्चात् त्रस दोइन्द्रिय से (लेकर) मनुष्य, देव लिये। देव भी कार्यसहित कर्मफलचेतना भोगते हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव भी कर्म अर्थात् राग के कार्यसहित, राग का दुःख फल / कर्मफलचेतना भोगते हैं। आहाहा! बड़े चक्रवर्ती, मिथ्यादृष्टि इन्द्र भी कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना वेदते हैं। आहाहा! एकेन्द्रिय में अकेली कर्मफलचेतना है और दो इन्द्रिय से (लेकर) देव स्वर्ग, नरकादि, मनुष्यादि कर्मचेतना अर्थात् विकार के कार्यसहित विकार का फल। कार्यसहित फल भोगते हैं। कर्मसहित भोगते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : एक कार्य... और एक कर्मफलचेतना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कार्य कर्मचेतना है परन्तु इसका फल भोगना, वह कर्मफलचेतना है। इसलिए तो यहाँ कहा, कार्यसहित-ऐसा लिया। अकेला कार्य नहीं। भाषा देखो न? **कार्य सहित कर्मफलचेतना...** अर्थात् अकेली कर्मचेतना नहीं, इसी प्रकार अकेली कर्मफलचेतना नहीं परन्तु कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। ओहोहो! उसकी थाह लेना, उसका तल लेना, तल खोजना, मूल खोजना, वह कोई अलौकिक पुरुषार्थ है। दुनिया में तो वह पुरुषार्थ है ही नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहा कि जो संसारी प्राणी हैं। एकेन्द्रिय के अतिरिक्त ईयल से लेकर सर्वार्थसिद्धि के देव। ईयल, ईयल। कीड़ा, कीड़े से लेकर स्वर्ग के पंचेन्द्रिय देव को कार्यसहित कर्मफलचेतना होती है। आहाहा! दुनिया ऐसा कहती है कि वह सुखी है। यहाँ कहते हैं कि उसे कार्यसहित कर्मफलचेतना है। आहाहा! अरबोंपति (होवे), नैरोबी में पन्द्रह तो अरबोंपति और साढ़े चार सौ करोड़पति हैं। लोग ऐसा मानो कि ओहोहो! क्या धूल है, कहा। करोड़ हो या तेरे अरब हों। उस पैसे का भोगना आत्मा को नहीं है। यह आया? पंचेन्द्रिय को या त्रस को, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, नारकी, देव, तिर्यंच-ढोर विकार के कार्यसहित विकार के फल को भोगनेवाले हैं। आहाहा! आया है या नहीं?

जीव को कार्य सहित... उस विकार के कार्यसहित... आहाहा! **कर्मफलचेतना होती है।** उसके पास लक्ष्मी होती है, स्त्री-पुत्र होते हैं - ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वह करोड़ रुपये का मकान भोगता है, वह लड्डू खाता है, रसगुल्ला... रसगुल्ला (खाता है)। प्रभु! तुझे कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना है। सेठाई नहीं, ऐसा कहते हैं। धन्नालालजी सेठ हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहा..! बात बहुत थोड़ी परन्तु, प्रभु! बात बहुत बड़ी है। आहाहा! दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय यह सर्व मनुष्य, जब तक आत्मा का भान-अनुभव नहीं, तब तक सबको कार्यसहित कर्मफलचेतना का अनुभव है। शरीर का नहीं, सब्जी का नहीं, स्त्री का नहीं, मकान का नहीं। आहाहा! मकान का अनुभव नहीं। आहाहा! परचीज़ को तो स्पर्श नहीं करता तो उसका अनुभव कहाँ से हुआ?

भगवान आत्मा परद्रव्य को तो स्पर्श भी नहीं करता। यह अन्दर आत्मा है, वह शरीर को स्पर्श नहीं करता, तो शरीर में कुछ भी होता है तो आत्मा शरीर को भोगता है, ऐसा नहीं है। अन्दर में स्वयं राग करता है, वह कर्मचेतना है। उसे भोगता है, वह कर्मफलचेतना दुःख है। राग कर्मचेतना, उसका फल दुःख कर्मफलचेतना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात सुनने को नहीं मिलती, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहाहा! सीमन्धर भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वहाँ से आकर उन्होंने यह शास्त्र बनाया है। आहाहा!

कहते हैं, यह पंचेन्द्रिय मनुष्य हैं कैसे? यह राजा, सेठ, अमलदार, अधिकारी, कार्यवाहक कौन हैं? कि कार्यवाहक कर्म का कार्य करके—रागरूपी, द्वेषरूपी कर्म का

कार्य करके—उसका फल कर्मफलचेतना—दुःख भोगते हैं, उन्हें कार्यवाहक कहते हैं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : बाकी कोई नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाकी रहे भगवान। आहाहा! यह तो नियमसार में बात आयी है। चारों ओर से लेकर बहुत संक्षिप्त में लिया है। आहाहा!

पृथ्वी, जल, वनस्पति, पीपल के जीव कर्मफलचेतना भोगते हैं। कर्मचेतना है तो सही परन्तु उसकी मुख्यता गिनने में नहीं आयी क्योंकि एकेन्द्रिय भी राग करता है, उतना कर्म है। परन्तु उसके अतिरिक्त कर्मफल के दुःख का भोगना बहुत है; इसलिए उसे कर्मफलचेतना एक ही गिनने में आयी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय में पाठ है। एकेन्द्रिय को तो कर्मफलचेतना है और त्रस को कर्मसहित कर्मफलचेतना है। और वहाँ तो ऐसा लिया है, ज्ञानचेतना तो केवली को ही होती है, ऐसा वहाँ लिया है परन्तु ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थान से शुरु होती है, किन्तु पंचास्तिकाय में पूर्ण ज्ञान की बात की है। वरना तो ज्ञानचेतना का अंश, आनन्द का वेदन, शान्ति के, ज्ञान के वेदन की शुरुआत ज्ञानचेतना की शुरुआत चौथे गुणस्थान से होती है। तेरहवें गुणस्थान में ज्ञानचेतना पूर्ण हो जाती है। इस अपेक्षा से पंचास्तिकाय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ज्ञानचेतना केवली को कही है।

यहाँ देखो **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना...** यहाँ भी ऐसा लिया है। आहाहा! कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी; कारणपरमात्मा अर्थात् द्रव्यस्वभाव। कार्यपरमात्मा अर्थात् सिद्ध भगवान; कारणपरमात्मा अर्थात् समस्त आत्माएँ अन्दर सत्तारूप से कारणपरमात्मा ही विराजमान है। दुःख और विकार तो पर्याय में अध्धर में... अध्धर में रहता है। आहाहा! वह कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा... यह तो प्रगट की बात है, हों! कारणपरमात्मा है, परन्तु जब तक मिथ्यात्व है तो उसका चेतना-ज्ञान नहीं है। वह तो सम्यग्दर्शन होता है, तब से ज्ञानचेतना होती है। द्रव्यस्वभाव में ज्ञानचेतना है, परन्तु वह शक्ति तो ध्रुवरूप से है, वेदनरूप से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : चीज़ है, वेदन में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में वेदन नहीं है। यहाँ तो वेदनरूप गिनने में आया है। कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी; कारणपरमात्मा अर्थात् त्रिकाली सत्ता चैतन्यसत्।

शुद्धज्ञानचेतना होती है। आहाहा! अथवा कार्यचेतना अर्थात् भगवान सर्वज्ञपरमात्मा

और कारणचेतना तो त्रिकाली ध्रुव में तो है परन्तु वेदन में नहीं है। जो मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, वह कारणचेतना है। आहाहा! वह कारणपरमात्मा की शुद्धज्ञानचेतना होती है। आहाहा!

समयसार तीन प्रकार के हैं। एक ध्रुवसमयसार; एक पूर्ण पर्यायवन्तसिद्ध समयसार; एक मोक्ष के मार्ग का साधकपना स्वभाव के अवलम्बन से आनन्द उत्पन्न हुआ, वह समयसार। आहाहा! वेदन में तो जो प्रगट हुआ, कारणपरमात्मा में से जो प्रगट हुआ; कारणपरमात्मा, (मोक्ष का मार्ग) उसका वेदन है। त्रिकाली कारणपरमात्मा का वेदन नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। उनमें तो शुद्धज्ञान का ही वेदन है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला, बाढ़ उछाला मारती है। ओहोहो! जैसे नदी में बहुत पानी हो और उछाला मारे; वैसे ज्ञानी को-समकिती को.. आहाहा! ज्ञानचेतना उछाला मारती है। ध्रुव में से प्रगट पर्याय में आती है परन्तु वहाँ अंश है। इन पूर्ण कार्यपरमात्मा में पूर्ण है। समझ में आया? वरना उसमें कोई कहे कि कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा को शुद्धचेतना कही तो समकिती को शुद्धज्ञानचेतना नहीं न? ऐसा नहीं है। यह बात यहाँ गौण रखकर बात की है। यहाँ तो उत्कृष्ट बात कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा की ली है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को भी अन्तर आत्मा के आनन्द के वेदन में ज्ञानचेतना ही है और जितना राग है, उतनी अभी कर्मचेतना है। जितना वेदन है, उतनी कर्मफलचेतना है। साधक जीव को तीन प्रकार की चेतना है। आहाहा! परमात्मा को एक शुद्धज्ञानचेतना ही है। अनादि मिथ्यादृष्टि को स्थावर में अकेली कर्मफलचेतना है और अनादि मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय को कार्यसहित कर्मफलचेतना है। कर्म—कार्य करते-करते... राग करे, पुण्य किया, विकल्प किये, यह किया, और वह किया और वह किया, यह कार्यसहित कर्मफलचेतना है। आहाहा!

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। उत्कृष्ट बात ली है। आहाहा! **इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञान-चेतना होती है।** देखो! यहाँ कारणसमयसार त्रिकाल नहीं लिया। कार्यसमयसार पूर्ण परमात्मा और कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग, यह **सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** यहाँ लिया। आहाहा! समझ में आया? कार्यसमयसार जो पूर्ण और कारणसमयसार जो साधन, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो साधन अन्दर, वह सहज फलरूप, स्वाभाविक

फलरूप.. आहाहा! वह जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द बाहर आया, अंकुर फूटा,.. जैसे पहली बरसात में अच्छी जमीन में अंकुर फूटते हैं, वैसे ही पहले सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण के अंकुर फूटते हैं। आहाहा! उसे ज्ञानचेतना कहते हैं परन्तु साथ में कर्मचेतना और कर्मफलचेतना है। पूर्ण वीतराग हुआ नहीं। राग है, उसे कर्मचेतना कहते हैं और राग का वेदन है, उसे कर्मफलचेतना कहते हैं। ज्ञान का वेदन है, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! मार्ग अलग, नाथ! प्रभु! तू कौन है? आहाहा! यह वाणी द्वारा आता नहीं, नाथ! ऐसी तेरी चीज़ है। तेरी चीज़ कोई ऐसी है कि वचन द्वारा आवे नहीं, लेखन द्वारा लिखने में आवे नहीं। आहाहा! वह तो जानने में और वेदन में आवे, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ यह कहा, कार्यसमयसार भगवान पूर्ण **कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** आहाहा! मोक्षमार्ग को भी कारणसमयसार कहते हैं। समझ में आया? कारणसमयसार त्रिकाल को भी कहते हैं। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका में है। यह सब बात टीका में है। सब बात देखी है, कि ज्ञानचेतना ज्ञानी को सहज फलरूप होती है। केवली को तो पूर्ण होती है।

इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप... आहाहा! अब तो कहते हैं, स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना त्रिकालीस्वरूप **निज कारणपरमात्मा...** आहाहा! देखो! **इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना...** त्रिकाली, उसका वेदन नहीं। आहाहा! **इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है...** कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के काल में भी और ज्ञानचेतना में उपादेय तो अकेला आत्मा ही है। आहाहा! त्रिकाली भगवान, वही अन्दर में आदरणीय है। दूसरी पर्याय भी उसमें आदरणीय नहीं है। यह कहा न? **सर्वदा एकरूप होने से...** भगवान तो त्रिकाली एकरूप होने से **उपादेय है ऐसा, हे शिष्य! तू जान।** आहाहा! यह गाथा आयी न? अव्यक्त भी अन्दर आ गया है। वाणी द्वारा न कह सके, ऐसा अव्यक्त आत्मा, उसकी जो पर्याय होती है, उसके वेदन में आनन्द है। त्रिकाली में चेतना है परन्तु वह ध्रुव है। उस ओर सन्मुख होकर वेदन करना, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं और भगवान पूर्ण परमात्मा तो, कार्यपरमात्मा तो ज्ञानचेतना है ही। ऐसी यहाँ बात कही है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)